महात्मा गाँधी की देशी रियासतों के प्रति नीति – एक समीक्षा

प्रो.जी एस.एल. देवड़ा
भूतपूर्व कुलपति, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा (जयपुर)

महात्मा गाँधी की देशी रियासतों के प्रति नीति को लेकर अनेक शंकाएं व्यक्त की जाती रही हैं। राजस्थान के इतिहास की पृष्ठभूमि में इसका विशेष प्रसंग भी है क्योंकि इस राज्य का निर्माण कुछ अपवादों को छोड़कर देशी रियासतों की भूमि को मिलाने से ही हुआ है। यह एक विवाद का विषय है कि क्या वास्तव में गाँधी जी 'ब्रिटिश इण्डिया' व 'इण्डियन– इण्डिया' के लोगों के राजनैतिक भविष्य को लेकर भिन्न–भिन्न धारणाएं रखते थे। कुछ शोधकर्ताओं ने तो यहाँ तक लिख दिया कि गाँधी जी ने देशी रियासतों के मामलों में 'अहस्तक्षेप' की नीति अपनाकर वहाँ के निवासियों को उनके भाग्य पर ही छोड़ दिया था। दूसरे शब्दों में उन्हें देशी नरेशों की निरंकुश व शोषण की नीतियों का शिकार होने दिया। इस प्रकार की आलोचनाओं को और हवा मिली जब यह जानकारी सामने आने लगी कि देशी नरेश समय–समय पर गाँधीजी से मिला भी करते थे। गाँधी जी का परिवार भी दरबारी पृष्ठभूमि का था और उनके पिता काठियावाड़ के नरेशों की सेवा में रहे थे। कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन से पूर्व कांग्रेस की देशी रियासतों की समस्याओं के प्रति उदासीनता व तटस्थता के भाव के लिए मुख्यतः गाँधीजी को

ही उत्तरदायी ठहराया जाता है। यद्यपि इन वर्षों में कुछ लेखकों ने गाँधीजी की इन नीतियों का तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में औचित्य ढूंढने का प्रयत्न किया है; उनकी नीतियों में क्रमशः जो समर्थन के भाव को लेकर निरन्तर परिवर्तन आया है उसे स्पष्ट किया है। लेकिन कांग्रेस के इस बोलबाले को कि देशी रियासतों के राजनैतिक भविष्य का निर्धारण वहीं के निवासियों को मुख्यतः करना है, के लिए गाँधीजी की प्रेरणा से ही उत्प्रेरित बतलाया जाता रहा है।

रियासती जनता के अधिकार

सम्भवतः गाँधीजी स्वयं अपने विरूद्ध की जा रही इस आलोचना से परिचित थे। इसी कारण उन्होंने बार–बार यह स्पष्ट किया कि, "मेरी नीति की एक बुनियादी बात यह है कि रियासती जनता के अधिकारों को बेच देने में मैं साथ नहीं दूंगा (चाहे) इससे ब्रिटिश हिन्दुस्तान की जनता को स्वतन्त्रता ही क्यों न मिलती हो।" अर्थात् वे देशी रियासतों के नागरिकों को अधिकारों के मिले बिना शेष भारत को मिलने वाली स्वतन्त्रता का कोई अर्थ ही नहीं मानते थे। गाँधीजी की नीतियों का मूल्यांकन करते समय हमें उनके उस संतुलित समीक्षात्मक सोच का स्मरण भी करना होगा, जिसको लेकर उनके समकालीन राजनीतिज्ञ भी हतप्रभ व खिन्न हो जाते थे। जब–जब उनके सहयोगियों को लगता था कि ब्रिटिश सरकार से अब कोई निर्णायक स्तर की बात नहीं हो सकती, गाँधीजी उन अवसरों पर पुनः बात करने की शर्त स्वीकार करके सभी को आश्चर्य में डाल देते थे। गाँधीजी की देशी रियासतों के बारे में नीति की विवेचना करते समय हमें उन अतिरंजित धारणाओं से बचना होगा जो यह कहने में हिचक नहीं रखती हैं कि वे देशी नरेशों के विरूद्ध नहीं जाना चाहते थे अथवा देशी रियासतों में चलाया गया आन्दोलन ब्रिटिश इण्डिया के आन्दोलन के समान एक विदेशी सत्ता के विरूद्ध स्वतन्त्रता संग्राम का संघर्ष था। देशी रियासतों में चलाया जा रहा आन्दोलन वहाँ उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की मांग को लेकर केन्द्रित था, जिसको बड़े –बड़े शीर्षकों से विभूषित करके उसके अर्थ को आच्छादित नहीं किया जा सकता। यह अन्तर हमें इटली व जर्मनी के एकीकरण के इतिहास में भी विभिन्न प्रकार की देशी व विदेशी शक्तियों के विरूद्ध संघर्ष में स्पष्टतः दिखायी देता है। इस अन्तर को समझते हुए यह भ्रम भी नहीं होना चाहिए कि इसका अर्थ परम्परावादी राजवंशीय शक्तियों को बनाये रखना है। राजरानी मीरा, गाँधी की राजस्थानी अहिंसक आदर्श थी।

गाँधी जी यह अवश्य चाहते थे कि देशी रियासतों की जनता अपने अधिकारों को पाने के लिए खड़ी हो एवम् उसके लिए वांछनीय संघर्ष करें। वे अपने राजनैतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कांग्रेस की ओर ही नहीं देखे। गाँधीजी के राजनैतिक चिन्तन में देशी नरेशों की नरेश के रूप में कोई स्थिति नहीं थी। उनका राजस्थान के राजनैतिक इतिहास को लेकर जो दृष्टिकोण था, वह भी अलग प्रकार का था। 'राष्ट्रवादियों' जैसी घटनाओं को मर्यादित करने के प्रयास शायद ही उन्हें प्रभावित कर पाये हैं। उनके स्थान पर गाँधी

जी को चित्तौड़ की राजरानी जो जन–जन के हृदय में बस गयी थी, मीरा के चरित्र ने अधिक प्रभावित किया था। उन्होंने मीरा के जीवन को अहिंसात्मक आंदोलन चलाने के लिए एक उल्लेखनीय उदाहरण व प्रेरणा स्त्रोत बतलाया और उन्होंने कांग्रेस जन को कहा कि ब्रिटिश अधिकारियों के जुल्म को सहते समय वे मीरा के भजन गाया करें। जिस प्रकार मीरा ने प्रेम व अहिंसा के बल पर अपने विरोधियों का मन जीत लिया था, उसी प्रकार वे भी उसी मार्ग पर चलते हुए अपने सकारात्मक प्रतिरोध को आगे बढायें। इसी प्रकार हम देखते हैं कि गाँधी जी अपने समकालीन अनेक राजनीतिज्ञों की भाँति उस विरोधाभास से बचे रहें, जो एक स्थान पर नरेशों को स्वतन्त्रता का नायक मानकर स्तुति करते थे तथा दूसरी ओर उनकी वंशीय व्यवस्था को मिटाने की आवाज उठाते थे। गाँधीजी मुख्य रूप से बंगाल से उठे उस पुनर्जागरण के उत्तराधिकारी नहीं थे, जिसने कांग्रेस के प्रारम्भिक वर्षों के आन्दोलन की दिशा निर्धारित की थी। उनकी राजनैतिक सोच विशेषकर भारतीय स्वतन्त्रता की पृष्ठभूमि में प्रथम विश्वयुद्ध के कारणों व परिणामों तथा उसी क्रम में आर्थिक संकट से अधिक प्रभावित होकर सामने आयी थी। परन्तु वे उसी क्रम में नाजीवाद तथा फासीवाद के उत्थान की प्रक्रिया के विरूद्ध थे क्योंकि उनके विचार में समस्याओं के समाधान का मार्ग प्राच्य संस्कृतियों के मूल आधार सत्य व अहिंसा में ढूंढे जाने चाहिये।

देशी रियासतों में गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम :

गाँधी जी देशी रियासतों की व्यवस्था में बदलाव चाहते थे। लेकिन वे जानते थे कि ब्रिटिश इण्डिया के प्रभाव से प्रभावित कुछ शिक्षित व्यक्तियों तथा प्रवासी राजस्थानियों के समस्त प्रयासों के पश्चात् भी सामन्ती व्यवस्था के विरूद्ध उटाया जा रहा विरोध अपने शैशवकाल में है। फिर भी गाँधीजी इस विरोध को दिशा देने में किसी न किसी प्रकार सहयोग करते रहे। गाँधीजी के निकट के सहयोगियों ने देशी रियासतों में अनेक रचनात्मक कार्यक्रम प्रारम्भ किये। जमनालाल बजाज उनमें से एक थे। गाँधीजी के परामर्श से 1920 ई. में ही 'राजस्थान सेवासंघ' की स्थापना कर दी गयी थी। लेकिन देशी रियासतों की इन नव शक्तियों के प्रयास वहाँ उभरते कृषक असंतोष से अभी मेल नहीं बैठा पाये थे जबकि गाँधी जी कृषक आन्दोलनों के महत्व को समझ गये थे और स्वयम् उनको नेतृत्व भी प्रदान कर चुके थे। ऐसा माना जाता है कि चम्पारण के किसान आन्दोलन ने बिजोलिया के किसानों को प्रेरणा दी। गाँधीजी ने किसानों पर हुए अत्याचारों के विरूद्ध महाराणा को भी लिखा व इस घटना ने कांग्रेस अधिवेशनों में देशी रियासतों के मामलों में चर्चा प्रारम्भ कर दी। 1920 ई. के नागपुर अधिवेशन में यह निर्णय भी हो गया कि कांग्रेस सभी नरेशों से अपील करती है कि वे अपने राज्यों में उत्तरदायी सरकार स्थापित करें। देशी रियासतों को लेकर बनाया गया भारतीय स्तर का संगठन 'इण्डियन स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेन्स' भी 1927 ई. में जाकर अस्तित्व में आया; जिसका लक्ष्य रियासतों

में उत्तरदायी सरकार स्थापित करना था। स्वाभाविक था कि यह संगठन देशी नरेशों द्वारा स्थापित 'नरेन्द्रमण्डल' के भागीदारों का यह आश्वासन कि वे अपने–अपने क्षेत्रों में 'रामराज्य' स्थापित करना चाहते हैं, गाँधीजी के गले भी नहीं उतरा होगा। संभवतः इसीलिए उन्होंने 1928 में ही कांग्रेस अधिवेशन में देशी रियासतों के निवासियों के आन्दोलन को नैतिक समर्थन देने की बात मानी। यद्यपि इसी अधिवेशन में कांग्रेस द्वारा भाषाई आधार पर प्रान्तों के निर्माण का पारित प्रस्ताव राजपूताने के लोगों के लिए विशेष आकर्षक नहीं था। उधर गाँधीजी के प्रयासों से भारत में चल रहे देशी रियासतों के दो संघों का विलय 1931 ई. में कर दिया गया। वस्तुतः गाँधीजी बटलर कमेटी की उन अनुशंसाओं से चिन्तित हो गये थे, जो ब्रिटिश इण्डिया व इण्डियन इण्डिया के मध्य विभाजन की प्रक्रिया को गहरा कर रही थी। ब्रिटिश सरकार द्वारा लन्दन में आयोजित गोलमेज सम्मेलन में मात्र नरेशों को ही प्रतिनिधित्व देना उन्हें रास नहीं आया। अब लोहा धीरे–धीरे गरम हो रहा था। वस्तुतः गाँधीजी के निकट के सहयोगी जमनालाल बजाज, के.सी. केलकर, पट्टाभि सीता रम्मैया आदि देशी रियासतों के मामलो में पूरी रूचि ले रहे थे। के.सी. केलकर के विचारों ने तो ब्रिटिश इण्डिया में भी देशी रियासतों के विषयों को लेकर एक सक्रिय बहस छेड़ दी थी।

देशी रियासतों के प्रति नेहरू का दृष्टिकोण

जवाहरलाल नेहरू ने देशी रियासतों में चल रहे आन्दोलनों में सदैव रूचि ली बल्कि यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि देशी रियासतों के मामलों में उनके योगदान का सही मूल्यांकन नहीं हुआ है। नेहरू भारत के उन राजनीतिज्ञों में से एक थे, जो प्रस्तावित भारतीय संघ के निर्माण में नरेशों के स्थान पर जन–प्रतिनिधियों की सक्रिय भागीदारी चाहते थे। वे उस मत के विरूद्ध थे कि भारतीय संघ में देशी रियासतों का अस्तित्व इस शर्त पर बना रहे कि जिसके बल पर वे सुरक्षा, वैदेशिक व मुद्रा के मामलों को प्रस्तावित केन्द्रीय सत्ता को सौंपकर आन्तरिक प्रशासन में पूर्ण स्वायत्तता का उपयोग करें। वे प्रस्तावित भारतीय संघ का मुगल या ब्रिटिश सार्वभौमिकता के ऐतिहासिक क्र म के सिद्धान्त पर गठित करने के पक्षधर नहीं थे। जोधपुर में 1942 ई. में लोक परिषद के कार्यकर्ताओं पर हुए अत्याचारों की नेहरू व गाँधीजी दोनों ने घोर आलोचना की।

हीरालाल शास्त्री ने अपनी आत्मकथा में यह लिखा है कि गॉधीजी ने 1942 ई. के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय देशी रियासतो में चलाये जा रहे जन–आन्दोलनों के प्रति कोई स्पष्ट आदेश नहीं दिये थे। इस विचार की समीक्षा करते हुए एम.एस.जैन ने सही व्याख्या की है कि गाँधीजी का कथन स्पष्ट था और उन्होंने देशी नरेशों को परामर्श दिया था कि वे अपनी सत्ता का स्त्रोत जनता से प्राप्त करें न कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से; और वे जनता के सेवक बनकर कार्य करें। नरेश अपना भाग्य जनता पर छोड़ दें तथा उसका महत्त्व समझें। मेवाड़ के माणिक्यलाल वर्मा ने गाँधीजी की नीतियों के विरूद्ध जाने वाले लोगों को यह स्पष्ट कर दिया था कि वे भारत छोड़ो आन्दोलन में

गाँधीजी के साथ हैं और जब वे आन्दोलन समाप्त करने का आदेश देगें तभी रियासतों में भी वह आन्दोलन समाप्त होगा। इधर जवाहरलाल नेहरू ने यह स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस को 1818 ई. में अंग्रेजों के साथ विभिन्न देशी रियासतों की संधियों से कोई सरोकार नहीं है। 1939 ई. में की गयी इस घोषणा के पश्चात् वस्तुतः भारत छोड़ो आन्दोलन का क्षेत्र देशी रियासतों में अपने आप फैल गया व इण्डियन व ब्रिटिश इण्डिया का भेद मिटने लगा। रही सही कमी क्रिप्स ने पूरी कर दी, जब उसने प्राचीन अभैद संधियों को मानने से मना कर दिया एवम् साथ ही रियासतों के प्रतिनिधियों से भी अलग से भेंट कर ली।

दूसरे विश्वयुद्ध के समाप्त होते–होते स्थितियाँ इतनी बदल गयी कि इस बात पर जोर दिया जाने लगा कि संविधान सभा में रियासतों के चुने हुए प्रतिनिधि ही जाने चाहिए। 1945–46 ई. में ए.आई. एस.पी.सी का अधिवेशन प्रथम बार राजस्थान की रियासत उदयपुर में हुआ और नेहरू ने पुनः एक बार और इसमें सम्मिलित होकर आन्दोलन का दिशा–निर्देश देने का कार्य किया। लेकिन अंग्रेजों ने अपनी चाल चलते हुए केबीनेट मिशन द्वारा यह घोषणा कर दी कि पुरानी संधियों में अंग्रेजों को मिले अधिकार लौटा दिये जायेंगे। अर्थात् देशी नरेश स्वतन्त्र होकर अपने राजनैतिक भविष्य का निर्णय लेंगे। इस खतरनाक स्थिति से निपटने के लिए गाँधीजी ने पुनः नेतृत्व संभाला और कहा कि भारत में अन्तरिम सरकार की स्थापना के पश्चात् सार्वभौम सत्ता का प्रयोग जनसाधारण की इच्छा के अनुसार होना चाहिये। अंग्रेजों की हठधर्मिता को देखते हुए कांग्रेस ने 24 नवम्बर 1946 ई. को अपने वार्षिक अधिवेशन में यह घोषणा की कि वह राज्यों के विलय अथवा संघ की किसी भी योजना को उस समय तक स्वीकार नहीं करेंगे, जब तक सम्बन्धित राज्यों की जनता की इस पर सहमति न हो जाय अथवा उन्हें इसकी जानकारी न दी जाये।

संदर्भ ग्रन्थ

1. ए.आई.एस.पी.सी. पेपर्स, राष्ट्रीय अभिलेखागार व राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
2. पेपर कटिंग फाइल्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
3. राजस्थान एजेन्सी रिकडिस, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
4. जी.आर.अभयंकर, प्रोब्लम्स् ऑफ इण्डियन स्टेटस्
5. आर.एल.हाण्डा, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम् स्ट्रगल इन प्रिन्सली स्टेटस्
6. सोभाग माथुर, स्ट्रगल फोर रेन्सपोन्सिबल गर्वमेण्ट इन मारवाड़
7. एम.एस.जैन, आधुनिक राजस्थान का इतिहास
8. जहूरखां मेहर एवं सुखनीरसिंह गहलोत, राजस्थान स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास।